Impact Factor (SJIF): 6.126 E-ISSN: 2583-1615, P-ISSN: 3049-3498

International Journal of Research in Academic World

Received: 02/August/2025 **IJRAW:** 2025; 4(9):70-73 **Accepted:** 15/September/2025

उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक गतिशीलता के प्रवर्तक तत्व

[*1]भूपेश प्रताप सिंह और [2]डॉ. प्रदीप कुमार सिंह

[*1]सहायक प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, मदनमोहन मालवीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कालाकाँकर, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत।

[2]प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, मुनीश्वर दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

ऋग्वैदिक युग में ही आर्यों के पूर्व की ओर प्रसरण की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई वह उत्तर वैदिक काल में पूर्णता को प्राप्त हो गयी। बदलते भौगोलिक परिवेश एवं आर्य तथा आर्येत्तर जातियों के सम्मिश्रण ने नवीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक संस्थाओं के वृद्धि एवं विकास का मार्ग प्रशस्त किया होगा। उत्पादन अतिरेक के कारण पूर्व में स्थापित वर्गों के साथ-साथ अन्य पेशेवरों के उदय के प्रमाण भी मिलने लगते हैं। ये वर्ण व्यावसायिक गतिविधियों के कारण प्रकाश में आये। इसी तरह धार्मिक विषयों में भी अब वंश परम्परा के स्थान पर ज्ञान को महत्त्व दिया गया। समाज में कठोर वर्ग भेद के बाद भी विवाह संस्कार के माध्यम से अन्तर्वर्गीय समागम किया जा सकता था। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में तत्कालीन समाज को गति प्रदान करने वाले कारकों का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द: समाज, सामाजिक संस्थायें, वर्ग समागम आदि।

प्रस्तावना

उत्तर वैदिक काल के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के प्रमुख साधनों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-साहित्यिक एवं पुरातात्विक। साहित्यिक साधनों के अन्तर्गत यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद संहितायें, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषदों की गणना की गयी है। इनमें संहितायें सबसे प्राचीन हैं। सामवेद यजुर्वेद के बाद का है। परन्तु ऋग्वेद पर अधिक आश्रित होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व नगण्य है। यजुर्वेद संहिता में जिस सामाजिक एवं भौगोलिक स्थिति का आभास मिलता है वह ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रारम्भिक अंशों में वर्णित स्थिति से साम्य रखती है। यजुर्वेद संहिता में कुरु-पांचाल देश महत्त्वपूर्ण हो गया है तथा यज्ञ की प्रक्रिया भी बहुत विकसित हो गयी है। यही स्थिति प्राचीनतम ब्राह्मण ग्रन्थों की भी है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐतरेय, कौषीतकि, जैमिनीय, पंचविश तथा तैत्तरीय अपेक्षाकृत प्राचीन माने गये हैं। गोपथ ब्राह्मण के बारे में यह अनुमान किया गया है कि वह ब्राह्मण साहित्य में बहुत बाद में जोड़ा गया। शतपथ ब्राह्मण भी उपर्युक्त ब्राह्मणों के पर्याप्त बाद के काल का है। उपनिषदों में ऐतरेय, कौषीतकि, छान्दोग्य, केन, तैत्तरीय, वृहदारण्यक, ईश तथा कठोपनिषद को अन्य उपनिषदों की अपेक्षा प्राचीन और पूर्व बौद्धयुगीन माना गया है। कुछ श्रौतसूत्रों की रचना भी वैदिक काल के अन्तिम चरण में प्रारम्भ हो गयी थी।

गंगा घाटी में होने वाले पुरातत्वीय उत्खननों से जो तथ्य प्रकाश में आये हैं, उनसे भी उत्तर वैदिक कालीन समाज तथा संस्कृति के विषय में जानकारी उपलब्ध होती है। पुरातत्वीय एवं साहित्यिक साधनों के बीच तादात्म्य के अभाव के बावजूद विद्वानों ने दोनों को सम्बन्धित करने की चेष्टा की है। चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के स्तरों से प्राप्त सामग्री का उपयोग उत्तर वैदिक कालीन समाज के अध्ययन के लिये किया जा सकता है। भगवानपुर एवं दधेरी से प्राप्त चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के अध्ययन से इस काल की तिथि द्वितीय सहस्राब्दी ई.पू. निर्धारित की गयी है।

ऋग्वैदिक युग में सभ्यता का केन्द्र पश्चिम से पूर्व की ओर विस्तारोन्मुख हो रहा था, किन्तु उत्तर वैदिक काल में सभ्यता के पूर्व की ओर प्रसार की यह प्रक्रिया निश्चित रूप से पूरी हो चुकी थी। आर्य जीवन की धुरी अब पंजाब न होकर क्रमशः कुरुक्षेत्र, गंगा-यमुना का दोआब, कुरु-पंचाल, कोसल, काशी और विदेह के क्षेत्र बनते जा रहे थे। शतपथ ब्राह्मण के एक उपाख्यान से सूचित होता है कि विदेध माधव ने सरस्वती से चल कर सदानीरा, जो उस समय कोसल की पूर्वी सीमा थी, को पार कर विदेह भूमि में यज्ञाग्नि पहुँचायी थी। संहिताओं में कोसल तथा विदेह का नाम नहीं प्राप्त होता है जब कि इनका नाम शतपथ ब्राह्मण में मिलता है इससे यह स्पष्ट है कि अब आर्य सभ्यता का केन्द्र पश्चिम न रह कर पूर्व हो गया था। इसके लिये उन्हे गंगा घाटी के दीर्घारण्यों को विदग्ध करना पड़ा होगा।

आर्यों के प्रसरण के फलस्वरूप बदलते हुये भौगोलिक परिवेश के

***Corresponding Author:** भूपेश प्रताप सिंह

कारण उत्पादन के साधनों तथा तकनीकी ज्ञान में वृद्धि हुई होगी। अब युद्ध और संघर्ष की अपेक्षा आर्यों और आदिम जातियों के सम्मिश्रण की प्रवृत्ति अधिक सक्रिय हो चली जिसके फलस्वरूप कुछ आदिम जातियों के लोग भी आर्य समाज में आत्मसात् हो गये होंगे। तरह-तरह के शिल्प, वाणिज्य तथा व्यापार का विकास हुआ होगा। सामाजिक संस्थायें अब जटिलता की ओर बढ़ने लगी तथा उसके प्रभावशाली नियन्त्रण के लिये धार्मिक चिन्तन तथा राजनीतिक संस्थाओं का विकास तेजी से होने लगा।

इस युग में होने वाले महत्त्वपूर्ण सामाजिक विकास की पृष्ठभूमि में आर्थिक आधारों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी। लोहे का ज्ञान इस काल की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध हुआ, जिसके माध्यम से जंगली भूमि को साफ कर कृषि योग्य बनाया गया होगा। लोहे के प्रथम स्तरबद्ध पुरातत्त्वीय अवशेष सर्वप्रथम अहिछत्र से प्राप्त हुये थे। यहाँ चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के स्तर से प्राप्त होने वाले लौह उपकरण महत्त्वपूर्ण हैं जो हस्तिनापुर, रूपर, पानीपत, इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, अतरंजीखेडा, आलमगीरपुर, श्रावस्ती आदि स्थलों से प्राप्त हैं। इन स्थलों से सामान्यतः बाणों के अग्रभाग, बर्छियाँ, पिनें, कीलें, कुल्हाडे और चिमटे प्राप्त हुये हैं। इन तमाम उपकरणों में कुल्हाड़ा ही मात्र एक ऐसा उपकरण है जो किसी न किसी रूप में जंगलों की कटाई द्वारा कृषि योग्य उर्वर भूमि के तैयार करने का माध्यम बना होगा। अन्य उपकरण युद्ध तथा कुछ शिल्पों से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। विशेषकर कीलों तथा पिनों का प्रयोग गृहों, गाड़ियों तथा रथों के उपयोगी उपकरणों को मजबूत बनाने के लिये किया जाता होगा।

पूर्व की ओर आर्यों के प्रसार तथा लोहे के कुल्हाड़े द्वारा साफ की गयी जंगली भूमि के माध्यम से कृषि योग्य भूमि अधिक मात्रा में उपलब्ध हुई, जिससे मात्र आवश्यकता से अधिक अन्न का उत्पादन सम्भव हुआ। इस युग में पहले की अपेक्षा कृषि के विकास का संकेत देने वाले अनाजों की खेती के उल्लेख मिलने लगते हैं। अनाज बोने की भिन्न-भिन्न ऋतुओं तथा खेत को जोतने, बोने, काटने तथा माड़ने का विवरण इस युग के ग्रन्थों में मिलने लगता है। उत्पादन के अतिरेक से यह स्पष्ट है कि अब अर्थव्यवस्था केवल अपने भरण पोषण के स्तर की न होकर अपेक्षाकृत बढ़े हुए अतिरिक्त उत्पादन के स्तर की हो गयी थी। इस स्तर पर अन्न के अपेक्षाकृत अतिरेक से समाज के गैर उत्पादक वर्गों (पुरोहितों एवं राजन्यों) तथा सेवकों का भरण-पोषण अधिक मात्रा में सम्भव हो सका होगा जो कि पूर्ववर्ती ऋग्वैदिक युग में इतनी अधिक मात्रा में सम्भव नहीं रहा होगा।

उत्पादन के अतिरेक ने जहाँ एक ओर व्यक्तिगत सम्पत्ति के विकास को प्रोत्साहित किया वहाँ दूसरी ओर संयुक्त परिवारों के विघटन की पृष्ठभूमि भी तैयार की। पूर्व वैदिक काल में सम्पत्ति पर कुल का अधिकार मिलता है परन्तु अब विभिन्न पारिवारिक सदस्यों में ही सम्पत्ति का विभाजन भी मिलने लगता है। तैत्तरीय संहिता में प्राप्त एक प्रसंग के अनुसार मनु ने अपने जीवनकाल में ही अपनी सम्पत्ति का विभाजन पुत्रों के मध्य कर दिया था। दाय विभाजन में सबसे बड़े पुत्र को प्राथमिकता दी जाती थी।

उत्पादन के अतिरेक से विभिन्न शिल्प तथा उद्योगों में उन्नति हुई। इस प्रगति की सूचना यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में प्राप्त होती है। इसमें कई नए पेशेवरों के नाम हैं। कई तरह के मछुवे (धीवर, दास, कैवर्त), खेत बोने वाले (वप्), धोबी (वास पल्पूली), मणिकार, बेंत का काम करने वाले (विदलकारी), रस्सी बांटने वाले (रज्जू सर्ज), धनुष्कार, इषुकार, लोहा गलाने वाले लुहार (अयसताप), सुनार (हिरण्यकार), वन-जंगल की देखरेख करने वाले (वनप), जंगली आग बुझाने वाले (दावप), वस्त्रों पर सुई आदि से कढ़ाई करने वाले (पेशकार) आदि शिल्पियों के उल्लेख मिलते हैं। पेशेवर नट (वंश नर्तिन्) तथा नाविक (नावाज) का उल्लेख भी प्राप्त होता है। पर कृषि एवं उद्योगों के बीच विशेष अलगाव इस काल में भी न रहा होगा।

विनिमय के माध्यम के रूप में गाय के अतिरिक्त 'निष्क' तथा 'हिरण्यपिण्ड' के कुछ सीमा तक प्रचलन के प्रमाण ऋग्वैदिक काल में ही मिलने लगते हैं। इस काल में विनिमय के अन्य माध्यमों के रूप में सुवर्ण खण्ड, शतमान, पाद तथा कृष्णल का भी उल्लेख मिलने लगता है। इनके प्रयोग के कारण अब व्यापार तथा उद्योग-धन्धों के संचालन में अपेक्षाकृत अधिक सरलता होने लगी होगी। पर सिक्कों की परम्परा का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। उत्तर वैदिक काल के अन्तिम चरण से सम्बन्धित कुछ ताँबे के लेखरहित ढले हुए सिक्के कौशाम्बी से मिले हैं जिनकी तिथि नवीं शताब्दी ई.पू. में निर्धारित की गयी है।

सामुद्रिक यात्रा के लिये उपयोगी सौ पतवारों वाले जलपोत सम्भवतः सामुद्रिक व्यापार के निमित्त प्रयुक्त किये जाते होंगे। वणिक तथा ब्याज लेने वाले वोहरे (कुसीदिन) का भी वर्णन मिलता है। कई स्थानों पर श्रेष्ठि या प्रधान व्यापारी का उल्लेख है। सम्भवतः यह श्रेणी का मुखिया होता था और श्रेष्ठ्य शब्द श्रेणी के प्रधान पद के विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

लोहे के ज्ञान, कृषि के विकास, अपेक्षाकृत बढ़ते हुये उत्पादन तथा उद्योग और व्यापार के विकास ने नगरों के उदय को भी प्रोत्साहित किया। उत्तर वैदिक साहित्य के परिशीलन से गंगा घाटी में कई नगरों के नाम ज्ञात होते हैं। नगरों में हस्तिनापुर तथा कौशाम्बी का अस्तित्व साहित्यिक तथा पुरातात्विक दोनों साक्ष्यों से प्रमाणित है। ऐतरेय ब्राह्मण में अयोध्या का उल्लेख हुआ है। परचक्रा, काम्पिल्य तथा आसन्दिवत् को उल्लेख भी नगरों के रूप में हुआ है। पुरातात्विक अवशेषों से कौशाम्बी के अतिरिक्त अतरंजीखेड़ा, नोह, चिरांद के बारे में भी ज्ञात होता है।

उत्तर वैदिक काल में व्यवस्थित तथा क्षेत्र बद्ध जीवन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के साथ-साथ उत्पादन में वृद्धि हुई। श्रम विभाजन की प्रवृत्ति पहले की अपेक्षा गहरी हुई, जिससे व्यावसायिक समुदायों का विकास सम्भव हुआ। इस युग में कुछ नवीन शिल्प तथा उद्योगों का विवरण मिलता है। विशेष रूप से लोहे का ज्ञान तथा तत्कालीन आयुधों पर राजन्य अथवा क्षत्रिय वर्ग के अधिकार ने राजसत्ता के विकास तथा अपेक्षाकृत बड़ी राजनीतिक इकाईयों के निर्माण में विशेष योगदान दिया। लोहे के आयुध प्रायः उन्ही क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं जहाँ बड़ी राजनीतिक इकाईयों के केन्द्र थे। इनमें गंगा-यमुना दोआब के ऊपरी भाग में कुरुओं का राज्य स्थित था। मध्य दोआब में बरेली, बदायूँ पांचालों से सम्बन्धित थे। मत्स्यों का सम्बन्ध भरतपुर, अलवर तथा जयपुर के क्षेत्र से सम्बन्धित किया गया है। राजनीतिक प्रभुत्व तथा लोहे के आयुधों के रूप में संहारक शक्ति का राजन्यों के हाथों में केन्द्रीकरण अपेक्षाकृत व्यापक स्तर पर शासित वर्ग के शोषण का कारण बना।

दूसरी ओर उत्पादन के अतिरेक से शासक-वर्ग (ब्रह्म तथा क्षत्र) की स्थिति विशेष सम्पन्न और सुदृढ़ हुई तथा उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। बलि तथा दक्षिणा के रूप में उत्पादन का अधिकांश भाग अब शासक वर्ग के हाथों में केन्द्रित होने लगा।'बलि' के रूप में प्राप्त होने वाले भाग के कारण ही राजा को सिंह के समान विशों का भोक्ता बताया गया है। राजा को दिये जाने वाले कर के रूप में बलि का प्रयोग उत्तर वैदिक ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर हुआ है। अथर्ववेद में एक आंजन मणि का प्रसंग प्राप्त होता है जो राजा के लिये सभी दिशाओं से अभय तथा विश से बलि प्रदान कराने वाली कही गयी है। यह बलि शासक कुल के लोगों द्वारा एकत्र की जाती थी।

बलि तथा कर के रूप में मिलने वाला यह अतिरेक दक्षिणा के द्वारा ब्राह्मणों को समृद्ध बनाता था इसीलिये पुरोहितों द्वारा स्थान-स्थान पर राजा को अधिक बलि प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया गया है। व्यापक स्तर पर दी गयी दक्षिणाओं के प्रसंग प्राप्त होते हैं। राजसूय यज्ञ के अवसर पर दी गयी दक्षिणा में दस हजार गायें, दस हजार हिरण्य, दस हजार हाथी, सहस्रों पशु तथा क्षेत्र उल्लिखित हैं। राजा जनक ने याज्ञवल्क्य को स्वर्ण से मढ़ी सींगों वाली सहस्रों गायें उपहार

में दी। दक्षिणा के विभाजन के विषय में पांचाल देश के ब्राह्मणों द्वारा सहस्रयुत तथा पच्चीस सौ गायों के पारस्परिक विभाजन का उल्लेख मिलता है। ये संख्यायें अतिरंजित हो सकती हैं। यद्यपि भूमि के भी दक्षिणा में दिये जाने के कुछ प्रसंग उपलब्ध होते हैं किन्तु आर. एस. शर्मा का यह मत अधिक उचित प्रतीत होता है कि यह प्रथा सामान्य रूप से प्रचिलित नहीं थी।

बढ़ते हुये अतिरिक्त उत्पादन तथा वैयक्तिक सम्पत्ति ने आर्थिक असमानता को भी बढ़ा दिया होगा जिसने सामाजिक गतिशीलता की पृष्ठभूमि तैयार की होगी। धनाभाव के कारण ऋण लेने वालों के उदाहरण भी उत्तर वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं। अथर्ववेद में अग्निदेव से ऋणमुक्त करने के लिये प्रार्थनायें की गयी हैं। ऋण लौटाये बिना ही ऋणमुक्ति की प्रार्थना भी की गयी है। अथर्ववेद में ही अप्सराओं से जुए के द्वारा होने वाले ऋण को क्षमा कर देने की प्रार्थना प्राप्त होती है। निर्धनता के कारण ही सम्भवतः अजीगर्त अपने पुत्र शुनःशेप को बेचने के लिये बाध्य हुआ होगा। दरिद्रता का प्रसंग शतपथ ब्राह्मण में भी प्राप्त होता है। इस प्रकार जो निर्धन हो जाते होंगे उनका सामाजिक स्तर निम्न हो जाता होगा।

जहाँ एक ओर ऋण लेने वालों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं वहाँ दूसरी ओर कर्ज देने वालों के प्रसंग भी उपलब्ध हैं जिनके लिये 'कुसीदिन' शब्द का प्रयोग किया गया है। ग्रामपतियों तथा महाशालों के विवरण सम्पत्तिशाली लोगों के अस्तित्व का आभास देते हैं। राजाओं तथा धनी व्यक्तियों की सेवा में नियुक्त दासों और सेवकों की एक बड़ी संख्या भी इस आर्थिक असमानता की परिचायक है।

आर्थिक असमानताओं का एक पक्ष शारीरिक श्रम के प्रति बदलते हुए दृष्टिकोण में परिलक्षित होता है। पूर्व वैदिककाल में शारीरिक श्रम के प्रति असम्मान का भाव कहीं भी व्यक्त नहीं किया गया है किन्तु उत्तर वैदिक काल के अन्तिम चरण तक आते आते शारीरिक श्रम को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। अतः एक ओर ब्राह्मण तथा क्षत्रिय, वैश्य वर्ग के उत्पादन के भोक्ता के रूप में एक दूसरे के सहयोगी बन गये तथा दूसरी ओर श्रम में शूद्रों के नियोजन से वैश्य शूद्र के निकट आने लगा। फलस्वरूप ब्राह्मण तथा क्षत्रियों का सामाजिक स्तर ऊँचा उठने लगा और सामान्यतः प्रथम दो वर्णों तथा वैश्यों के बीच ऊँच-नीच का अन्तर बढ़ने लगा। इस प्रकार इस प्रक्रिया के क्रम में वैश्यों का सामाजिक स्तर स्वाभाविक रूप से गिरने लगा। इसका आभास शतपथ ब्राह्मण के उस प्रसंग में उपलब्ध होता है जहाँ सर्वप्रथम 'तक्षण' के, जो वैश्य वर्ग के सम्मानित सदस्य थे, स्पर्श को दशपूर्णमास यज्ञ में वर्जित किया गया।

वर्गों का स्वरूप स्पष्ट हो चला था अतः प्रस्तुत काल में व्यावसायिक गतिशीलता पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा कुछ कम हो गयी थी। यह प्रथम दो वर्णों में विशेष रूप से देखने को मिलती है। साधारणतः कहा जाता है कि केवल ब्राह्मण ही पुरोहित हो सकते थे, वेदों का अध्यापन कर सकते थे, जबकि इस बात के प्रमाण हैं कि ब्राह्मण केवल वे थे जो वेदों का अध्यापन में समर्थ थे तथा पुरोहित का पद ग्रहण करने योग्य थे। कृष्ण यजुर्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि ज्ञान से व्यक्ति ब्राह्मण होता था वंश-परम्परा से नहीं। काठक एवं मैत्रायणी संहिता में भी इसी तरह का उल्लेख मिलता है।

क्षत्रीयवर्ग में भी ऋषित्व प्राप्त करने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं उन्हे यज्ञ का सम्पादन करते हुये भी देखा जा सकता है। किसी कारणवश अपने पुरोहित से अनबन हो जाने के कारण राजा विश्वन्तर सौषदमन ने स्वयं यज्ञ का सम्पादन किया। ऐतरेय ब्राह्मण के एक प्रसंग में भी क्षत्रिय द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्ति का संकेत उपलब्ध हैं। पंचविश ब्राह्मण में सिन्धुक्षित नामक राजा एवं दीर्घश्रवस नामक राजकुमार द्वारा ऋषित्व प्राप्ति का प्रकरण प्राप्त होता है।

पूर्व वैदिक काल की भाँति उत्तर वैदिक काल में भी शिक्षा एवं धर्म एक दूसरे से सम्बन्धित दिखाई पड़ते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के लेखक महीदास, इतरा या शूद्रा का पुत्र बताया गया है। इस विषय में उपनिषदों में विशेष लचीलापन दृष्टिगोचर होता है जहाँ ब्रह्मज्ञान के विषय में वर्ण सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध नहीं था। वृहदारण्यक उपनिषद में एक स्थल पर कहा गया है कि प्रज्ञात्मा से आलिंगित हो सुषुप्तावस्था को प्राप्त करने पर चण्डाल अचण्डाल तथा पौल्कस अपौल्कस हो जाता है।

ब्राह्मणों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने वाले क्षत्रिय उपदेष्टाओं के उल्लेख विभिन्न उपनिषदों में प्राप्त होते हैं। विदेहपति राजर्षि जनक ने बहुत दक्षिणा वाले एक यज्ञ में ब्राह्मणों के साथ ब्रह्मविद्या के विषय में शास्त्रार्थ किया था। याज्ञवल्क्य के साथ इनके विचार विमर्श का विवरण छान्दोग्य उपनिषद में विस्तार से मिलता है। इसी उपनिषद में जनक द्वारा बुडिल आश्वराश्वि को उपदेश देने का प्रसंग भी प्राप्त होता है। आचार्य पद पर ब्राह्मणों का अधिकार था । इसीलिए अजातशत्रु को बालाकि से यह कहना पड़ा कि क्षत्रिय ब्राह्मण को शिष्य रूप में ग्रहण करें, यह परम्परा के विरुद्ध है, फिर भी मैं तुम्हे ज्ञान दूँगा। गौतम तथा श्वेतकेतु प्रावाह्ण जाबालि के समक्ष शिष्य भाव से उपसन्न हुए। इसी प्रकार प्राचीनशाल औपमन्यव, सत्ययज्ञ पौलुषि, इन्द्रद्युम्न भाल्लपेय, जन शार्कराक्ष्य, बुडिल आश्वतराश्वि, ये पाँच महाशालापति महाश्रोत्रियगण आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये राजा अश्वपति कैकेय के शिष्य हुये। हीनवर्गीय दासीपुत्र सत्यकाम जाबाल भी ऋषि तथा आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। जैमिनीय उपनिषद में सुदक्षिण क्षैमि नामक ऋषि को शूद्र कहकर सम्बोधित किया गया है। मैत्री उपनिषद में शूद्र शिष्यों का उल्लेख तथा अयाज्य लोगों के लिये यज्ञ कराने वालों का संकेत भी प्राप्त होता है।

वर्ग बनने के बावजूद अभी विवाह के माध्यम से एक वर्ग का एक व्यक्ति दूसरे वर्ग में प्रविष्ट हो सकता था। अन्तर्वर्गीय समागम अथवा विवाह सम्बन्धी उन प्रतिबन्धों को उल्लेख नहीं मिलता है जो परवर्ती काल में परिलक्षित होते हैं। अथर्ववेद के अनुसार, ब्राह्मण को सभी कन्याओं के श्रेष्ठतम पति होने का गौरव प्राप्त था ।

विवाह के माध्यम से ब्रह्म तथा क्षत्र के मध्य होने वाला यह उत्कर्ष तथा अपकर्ष उतने प्रबल रूप से नहीं होता था जितना कि निम्न वर्ग से उच्च में। विवाह के माध्यम से कुछ राजन्यवर्गीय कन्यायें ब्राह्मण वर्ग में प्रविष्ट हुई। राजर्षि शर्यात ने अपनी पुत्री सुकन्या का विवाह ब्रह्मर्षि च्यवन के साथ किया था। छान्दोग्य उपनिषद में जानश्रुति पौत्रायण तथा रैक्व के वार्तालाप का प्रकरण प्राप्त होता है जिसमें ब्राह्मण तथा राजन्य कन्या के मध्य हुये विवाह का संकेत मिलता है। राजा जानश्रुति पौत्रायण ने गाय, आभूषण, दासी आदि देकर रैक्व मुनि से ज्ञान प्राप्त करना चाहा परन्तु मुनि ने उन्हें शुद्र कह कर उनकी सभी वस्तुयें घृणा के साथ लौटा दी। जब राजा ने अपनी पुत्री विवाह में मुनि को दी तभी उन्होने ब्रह्मज्ञान देना स्वीकृत किया।

इसी प्रकार हीन वर्गीय स्त्रियों का उच्च वर्ण में प्रवेश भी दृष्टिगोचर होता है। आर्य तथा शूद्र के मध्य होने वाले विवाह सम्बन्ध यद्यपि प्रशंसनीय नहीं माने जाते थे फिर भी उस समय वे विधिक दृष्टि से वैध तथा प्रचिलित रहे होंगे। पंचविश ब्राह्मण में वत्स तथा मेघातिथि का दृष्टान्त मिलता है। ये दोनों ऋषि कण्व के पुत्र थे, परन्तु मेघातिथि द्वारा वत्स को 'अब्राह्मण शूद्रासुत' कहकर अपमानित किये जाने का प्रसंग है जो इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि वत्स की माता शूद्रा थी। सत्यकाम की माता जाबाला का दासी होना लोकप्रचिलित है। इस वृतांत का उल्लेख शतपथ ब्रह्मण तथा छान्दोग्य उपनिषद दोनों में है।

केवल ब्राह्मण अथवा ऋषियों के साथ ही शूद्रा स्त्रियों के विवाह अथवा संबन्ध बनते थे, यह नहीं कहा जा सकता। राजसूय के 'रत्नहविरिष्ट' समारोह के अवसर पर उल्लिखित राजा की पत्नियों में 'पालागली' का उल्लेख भी हुआ है जो शूद्र होती थी। 'आर्य' तथा शूद्रा के मध्य सम्बन्ध का उल्लेख भी कई स्थलों पर किया गया है।

शूद्र से विवाहित वैश्य स्त्रियों के भी कतिपय दृष्टान्त उपलब्ध हैं।

यजुर्वेद संहिता में 'अयोगु' शब्द का उल्लेख मिलता है। यदि इसका सम्बन्ध परवर्ती आयोगव से स्थापित किया जाय तो इसका तात्पर्य शूद्र से विवाहित एक अर्य (वैश्य) स्त्री से होगा। उपर्युक्त साक्ष्य से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्ण व्यवस्था के अधिक ठोस न होने के कारण वैवाहिक सम्बन्धों में लचीलापन था ।

सन्दर्भ

1. मजुमदार, आर. सी. सम्पादित, वैदिक एज पृ. 403-472.
2. रेनो लुइ, वैदिक इण्डिया, पृ.15.
3. विण्टरनित्स, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर, पृ. 190-191.
4. बेलवलकर एस.के. तथा रानाडे आर. जी., हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी, पृ. 87.
5. त्रिपाठी विभा, द पेंटेड ग्रे वेयर, ऐन आयरन एज कल्चर ऑफ नार्दर्न इण्डिया, पृ. 68.
6. मुकर्जी आर.के., हिन्दू सभ्यता, अनु. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ.108-109.
7. राव विजयबहादुर, उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति, पृ.40-203.
8. शर्मा जी. आर., एक्सकैवेशन्स एट कौशाम्बी.
9. शर्मा आर.एस. शूद्राज इन ऐंशियंट इंडिया, पृ.30-31.
10. शर्मा आर. एस. वही. पृ.35.
11. पाण्डेय राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ. 226-227.
12. जायसवाल के.पी., हिन्दू पॉलिटी पृ. 205.
13. शर्मा आर. एस., ऐस्पेक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स, पृ.132।